(कवित्त)

जेतो घट सोधौं पै न पाऊं कहाँ आहि सो धौं
को धौं जीव जारै अटपटी गति दाह कै
धूम कों न धरैं, गात सीरो परैं ज्यौं ज्यौं जरैं
ढरैं नैन-नीर वीर हरैं मति आह की ।

जतन बुझे हैं सब जाकी झर आगें अब
कबहूँ न दबै भरो भभक उमाह की।
जब तें निहारे घनआनँद सुजान प्यारे
तब तें अनोखी आग लागि रही चाह की ॥१८॥

प्रकरण—पूर्वराग का वर्णन है। प्रिय के दर्शन से राग की उत्पत्ति है। प्रत्यक्ष दर्शन से प्रेम हुआ है। दर्शन के अनंतर विरह की अग्नि को क्या स्थिति है इसका वर्णन है। विरहाग्नि की विलक्षणता और प्रचंडता का वर्णन है। विलक्षणता यह है कि उसका पता नहीं चलता। प्रचंडता ऐसी है कि उसकी शांति के उपाय भी उसी में भस्म हो जाते हैं।

चूर्णिका—जेतो = जितना। घट = शरीर। मोधौं = खोजती हूँ। आहि = है। सो = वह। धौं = न जाने। को = कौन। जीव = प्राण। जारै = जलाता है, विरह की आग से जला रहा है। अटपटी = बेढंगी। गति = स्थिति, दशा। दाह = जलन। धूम = धूँआ। न धरै = नहीं धारणा करती। गात = (गात्र) शरीर। सीरो = ठंढा। ढरै = गिरता है, टपकता है। बीर = हे सखी। आह को मति = आह करने की बुद्धि, आह का ज्ञान [अथवा आह—हिम्मत, हियाव, साहस की बुद्धि अर्थात् धैर्य]। जतन = यत्न। बुझे हैं = ठंढे पड़ गए हैं। झर = ज्वाल, आँच। आगे = सामने अर्थात् बीच में। भभक = प्रज्वलन। उमाह = उमंग।

तिलक—जब से घनआनंद सुजान प्रिय को देखा तब से चाह को अनोखी आग लगी है। (उसका अनोखापन यह है कि) जितना भी शरीर में उसकी खोज करती हूँ वह मिलती ही नहीं, पता ही नहीं चलता कि वह कहाँ है। जब उसका पता नहीं तो फिर जी को जला कौन रहा है। जलाना भी साधारण नहीं जलन की स्थिति बेढंगी है, जैसी सामान्यता हो सकती है उससे पृथक् है, बहुत बढ़-चढ़कर है (पता न चलने का हेतु है कि) इसमें धूँआ होता ही नहीं (यदि धूँआ होता तो जहाँ से धूँआ आता होता वहाँ आग के होने का पता चल जाता। 'यत्र यत्र धूमः तत्र तत्र वह्निः' से अनुमान कर लिया जाता है। ऐसी भी आग होती है जिसमें धूँआ नहीं होता, पर वह जहाँ होता है वहाँ गरमी होती है, पर) इस आग से शरीर ज्यों ज्यों जलता है त्यों त्यों ठंढा पड़ता जाता है। (यदि कहीं कुछ उष्णता होती भी

तो उससे शीतल करने के लिए) नेत्रों से नीर (निरंतर) प्रवाहित होते रहते हैं। हे सखी, 'आह' न करने का परिणाम यह है कि श्वास की वायु से भी आग के प्रज्वलित होने की कुछ संभावना थी, सो नहीं रही। जहाँ वह सुलगती दिखती वहाँ उसके अस्तित्व का पता चल जाता। वह भी नहीं हो पा रहा है। विलक्षणता यह है कि उसको शांत करने के लिए जितने उपचार किए जाते हैं वे उसकी तीव्र ज्वाला के कारण बुझ जाते हैं समाप्त हो जाते हैं। अब तो वह इतनी प्रचंड हो गई है कि (प्रचंड होने के) उत्साह से भरी उसकी भभक कभी दबती ही नहीं है। यह प्रचंड से प्रचंडतर, प्रचंडतम होती जाती है।

व्याख्या—जेती = इस शब्द से यह लक्षित होता है कि शरीर की खोज निरंतर होती रहती है। पहली बार शोध करके विरत नहीं हो जाया जाता। दूसरी बार के शोध में उसकी अज्ञेयता अपेक्षाकृत अधिक दुरूह हो जाती है। शोध करने में शैथिल्य भी नहीं है, वहीं जोश-खरोश, उससे बढ़कर प्रयत्न। घट = घट शब्द का व्यवहार करके शोध करने की स्थिति साक्षात् कर दी गई। 'घट' घड़े को कहते हैं, बड़े घड़े को कहते हैं। बड़े-बड़े घड़ों में प्राचीन काल में वस्तुएँ रखी जाती थीं, गाँवों में अब भी रखी जाती हैं। अनेक वस्तुएँ पुटकी में बाँधकर रख दी जाती हैं। घड़े से उन्हें खोज निकालने में देर लगती है। 'घट' के भीतर खोज करनी पड़ती है। शरीर के भीतर खोज करना लक्षित करना है, अंतःकरण की खोज है यह। शरीर के ऊपर क्या पता चले इस आग का, भीतर ही पता नहीं चलता। सोधौं = शोध कहते हैं भली भाँति खोज करने को। कोई विधि जिसमें छूटे न ऐसी खोज। इससे शोध करने में सावधानी व्यंजित है। कहाँ = इससे यह स्पष्ट है कि सर्वत्र खोज कर ली गई है। कोई कोना छूटा नहीं। जारै = जलाने की क्रिया हो रही है, जलानेवाले का होना कार्य-कारण की परंपरा से अनिवार्य है। अटपटी = जलन सामान्य नहीं, असामान्य, असाधारण है। सामान्य जलन हो तो शरीर की उष्णता, हलका ज्वरांश या ऐसे ही कुछ मान लिया, पर असाधारण होने से उसकी खोज करने की प्रवृत्ति भी होती है। उसके जानने की आवश्यकता भी पड़ती है। धूम = आग की असाधारणता प्रकट

करने के लिए उसके स्वरूप को बतलाते हैं। साधारण आग में धूम होता हो, पर आग अनुष्ण नहीं होती, जहाँ वह अपना प्रभाव डालती है वहाँ गरमी बढ़ती है। यहाँ शरीर क्रमशः उष्ण होने के बदले अधिकाधिक शीतल होता जाता है। जहाँ आग होगी वहाँ पानी साधारणतया नहीं रह जाता। यह आग ऐसी है कि भीतर आग है वहीं से पानी भी नेत्रों में आता रहता है, गिरता रहता है। 'आह' करने की भी बुद्धि नहीं रह जाती। आह करे कौन। आग होने पर वायु बढ़ती है। आह का अधिकाधिक निकलना स्वाभाविक है, पर यहाँ आह ही नहीं निकलती। आह का अर्थ हिम्मत या साहस भी है। साहस की बुद्धि नहीं है। शैथिल्य की अभिव्यक्ति। 'वीर' के साहचर्य में 'आह' का यह अर्थ चमत्कार भी लाता है। बुझै = यत्नों के बुझने का अर्थ यह है कि वे भी अपनी दीप्ति करते हैं। पर प्रचंड आग में उनकी दीप्ति विलीन हो जाती है। बुझना कहने में यह भी अभिव्यक्त होता है कि वे यत्न अब काम के नहीं रहे। उनका पुनः उपयोग-प्रयोग नहीं हो सकता। सब = एक भी यत्न बचता तो भी कदाचित् भविष्य में आग से छुटकारा पाने की संभावना थी। पर सब यत्न समाप्त हो गए। झर = इसका अर्थ ज्वाला है, पर 'बुझै' के साथ इसका अर्थ झड़ी लगा लें तो बुझने में सौकर्य दिखने लगे। अब यत्नों के बुझ जाने पर, उनकी आग इसकी आग को और बढ़ा गई। यत्नों के समाप्त होने के पूर्व तो कभी कभी इसके दबने की भी स्थिति ज्ञात होती थी, कम से कम अनुभूति तो होती थी कि वह बुझेगी पर अब तो उसकी प्रचंडता कभी शांत नहीं होती। कबहूँ = इससे नैरंतर्य और प्रचंडता दोनों की ओर संकेत है। न दबै = बढ़ती ही है। जिसमें उमाहवाली भभक होगी उसे उमंगित होना ही है। जब तें = देखने के साथ ही। निहारे = देखे गए, दिखे। भली भाँति दिखे। निहारने और देखने में अंतर है। अनोखी = नवक (नवीन)—नोक, नोख, नोखी; अनोखी।

शैली—'अनोखी आगि' से व्यतिरेक। आनंद के घन (बादल) को देखकर आग लगने में, झर से बुझने में, सीरो परै ज्यों ज्यों जरै में विरोध। 'सोधौं' का यमक। 'अनोखी आग' का समर्थन युक्ति से अतः काव्यलिंग। बुझे हैं = लक्षणलक्षणा। बुझने का प्रयोग प्रवाह में अन्यत्र भी—मन बुझा बुझा है, शिथिल है, उदास है इस अर्थ में।

आँखें जौं न देखें तौ कहा हैं कछु देखति ये
ऐसी दुखहाइनि की दसा आय देखियै।
प्रानन के प्यारे जान रूप उजियारे बिना
मिलन तिहारे इन्हैं कौन लेखें लेखियै।
नीर-न्यारे मीन औ' चकोर चंदहीनहूं तें
अति ही अधीन दीन गति मति पेखियै।
हौ जू घनआनँद ढरारे रसभरे भारे
चातिक बिचारे सों न चूकनि परेखियै ॥ १९ ॥

प्रकरण—विरहिणी के नेत्र और प्राण विरह से अधिक व्याकुल हैं। उसकी चातकवृत्ति है। यदि प्रिय किसी प्रकार के कुतूहल से ही आकृष्ट होता है तो उससे यह कहना कि विरहिणी को देखने आप आइए या मत आइए, पर आँखों की यह स्थिति अवश्य देख जाइए कि ये आपको न देखकर कुछ देखती ही नहीं। कुतूहल की शांति के लिए उनकी दशा देख जाइए। आँखें प्रिय को न पाकर निरर्थक हो गई हैं। उनकी व्यर्थता की यह स्थिति भी विलक्षण कुतूहल का दृश्य है। प्रिय ने अत्यंत दैन्य की स्थिति या तो मीन की देखी होगी या चकोरी की। यदि उन स्थितियों से बढकर दैन्य देखना है तो यहाँ देखा जा सकता है। यदि विरहिणी के अपराध के कारण आप में पराङ्मुखता जगी है तो उसका परित्याग ही श्रेयस्कर होगा।

चूर्णिका—न देखैं = आपको नही देखती। कहाँ = क्या। तौ कहा० = तो क्या कुछ देखती भी हैं ये अर्थात् कुछ भी नही देखती। प्रिय को न देखकर आँखें किसी वस्तु को देखना पसंद नहीं करतीं। दुखहाइनि = दुखिया (स्त्रीलिंग)। जान = सुजान, प्रिय। रूप = सौंदर्य। रूप-उजियारे = सौंदर्य के प्रकाशवाले। बिना० = आपके मिले बिना, आपके संयोग बिना। इन्हैं = इन्हें किसी गिनती में गिनूँ। अर्थात् आपके मिलन के बिना इन (आँखों) का होना न होना एक सा है। ये आँखें यदि देखेंगी तो आपको ही देखेंगी। आँखें देखने के लिए होती हैं। अतः आपके आने पर ही आँखें आँखें हो सकता हैं। नीर-न्यारे = जल से पृथक्, जल से वियुक्त! मीन = मछली। अधीन = विवश। गति = दशा। मति = बुद्धि। पेखियै = दिखती हैं। ढरारे = ढलनेवाले, द्रवीभूत होनेवाले, बरसनेवाले। रस = प्रेम, जल। चूकनि = चूक में डालकर, भूलकर। न परेखियै = परीक्षा मत लें। [अथवा चातक = चातक बेचारे की भूलों का बुरा न मानें (परेखिबो = बुरा मानना)]।

तिलक—हे प्राणों के प्रिय, सौंदर्य का प्रकाश करनेवाले सुजान, बिना आपके देखे ये आँखें क्या कुछ देख भी पाती हैं ? आपको न देखकर ये कुछ भी नहीं देखतीं। ऐसी दुखिया इन आँखों की दशा ही आकर देख लें। कभी आपने ऐसी विलक्षण आँखें न देखी होंगी। आपके मिलन के बिना सच पूछिए तो ये किसी गिनती में नहीं हैं। जैसे इनका होना वैसे न होना। आपने जलवियुक्त मीन और चंद्रवियुक्त चकोर की विवश गति और दीन मति देखी होगी। पर इनकी विवशता और दीनता मीन एवम् चकोर से कहीं अधिक है। केवल आपको ही चाहने के कारण मेरी चातकवृत्ति है। आप तो आनंद के घन हैं, द्रवणशील हैं, अत्यंत रसमय हैं, मुझ बेचारे चातक को इस प्रकार भूलकर मेरी परीक्षा न लीजिए अथवा उसकी भूलों का विचार न कर उस पर द्रवीभूत होइए, बुरा मत मानिए।

व्याख्या—आँखें = दोनो आँखें। यदि एक आँख दर्शन-व्यापार से विरत होती तो भी कोई बात होती। न देखें = आपको न देखकर किसी को नहीं देखतीं। किसी अन्य को देखने योग्य तभी ये हो सकती हैं जब पहले आपको देख लें। आपके प्रति अनन्यता होने पर भी किसी के प्रति उनके उन्मुख होने में तब बाधा नहीं है जब आपको देख लें। दुखहाइनि = दुखी और दुखहाई में अंतर है। दुखी वह भी है जिसे एक ही दुख है। एक दुख होकर दूसरा दुख न भी हो तो भी दुखी। दुखहाई वह है जिसके प्रति एक के अनंतर दूसरा दुख आता रहता है अथवा जो दुख कष्ट दे रहा है वह कष्ट देता ही रहता है। नैरंतर्य के लिए 'हाई' प्रत्यय है। आय = यों इस दशा की सूचना आपको दी जा रही है पर आँखों की दशा कानों से नहीं देखी जा सकती। आँखों से देखने से ही वास्तविकता का पता चल सकता है। दूसरे की आँखें देखकर ठीक स्थिति का ज्ञान ही नहीं करा सकतीं, अनुभव कराना तो और भी कठिन है। प्रानन० = प्राणों के प्रिय, केवल आँखों के बहिरिंद्रिय के दर्शनीय नहीं, प्राणों के प्रिय। आँखों के दर्शनीय होने से दर्शन मात्र से तृप्ति हो जा सकती है, प्राणों के प्रिय के दर्शन से ही नहीं मिलन से-संयोग से-तृप्ति होना स्वाभाविक है। रूप० = नेत्र प्रियदर्शन भाव से रिक्त हैं, शून्य हैं, व्यर्थ हैं। इन नेत्रों में जो भी दीप्ति है वह प्रिय के प्रकाश से ही। उस प्रकाश के न मिलने से नेत्रों में ज्योति-

मांच ही नहीं ज्योतिराहित्य भी हो जाता है। विना मिलन = नेत्र प्रिय के देखे विना शून्य हो गए। गिनती में शून्य का स्वतंत्र कोई महत्त्व नहीं। पर अन्य संख्या के मिलने से शून्य का महत्त्व स्पष्ट दिखाई देता है। प्रिय वह संख्या है जिसके साथ लगने से नेत्रों का महत्त्व प्रकट हो सकता है। वे गिनती में आ सकते हैं। अभी तो उनकी कोई गिनती ही नहीं। प्रिय के देखने पर तो दसगुने हो जाएँगे। नीर न्यारे = जल से पृथक् होने पर मीन विवश हो जाता है, ऐसा विवश हो जाता है कि उसकी विवशता अंततोगत्वा मृत्यु में परिणत हो जाती है। आँखों को उपमा मछली से दी जाती है। आकार, चंचलता आदि के आधार पर ऐसा किया जाता है। पर मीन और नयन की एकवाक्यता संयोग में भले ही हो, वियोग में नहीं रहती। वियोग में नयन प्रिय से पृथक् होने पर मीन की भाँति जलहीन नहीं होते। प्रिय के लिए आँसू बहाते रहते हैं। उस जल के संयोग से कदाचित् जीते रहते हैं। कुछ 'मीनता' उनमें रह जाती हो तो इस जल के कारण रह जाती होगी। पर ऐसा कहना भी ठीक न होगा। मीन के लिए जो जल है वह नयन के लिए अश्रु नहीं। प्रिय उनके लिए, प्रिय का रूप उनके लिए जल है। उस रूप की प्राप्ति के विना वे मरते नहीं, वेदना अत्यधिक होने पर भी जीते रहते है। मीन तो मरा और उसका कष्ट हटा, पर नयन इस प्रकार कष्ट से मोक्ष नहीं पाते। रहा आँसू, कुछ वेदना को कम करता होगा, सो भी नहीं। उस आँसू से वेदना तो बढ़ती ही है। विरह की आग में यह पानी पड़ा और वह आग सुलगी। यह वह आग है जिसमें दृगजल ईंधन का काम करता है। यही नयनों की 'अति अधीनता' है। मीन के वश में तो मृत्यु है। वह तुरंत बुला लेता है उसे। पर नयन उसे नहीं बुला पाते, कष्ट निरंतर सहते रहते हैं। विवशता की सीमा का अतिक्रमण है, मरना भी अपने हाथ में नहीं, आत्महत्या भी प्रेमी नयन नहीं कर सकते। प्रिय के रूपदर्शन की लालसा ऐसा करने ही कब देगी। चकोर चंदहीन०—मीन और जल का संबंध इतना निकट का होता है कि मछली उसी पानी में रहती है, उसका थोड़ा सा भी प्रिय से अंतर नहीं। पर चकोर का प्रिय चंद्र उससे बहुत दूर है। वह दूर रहनेवाले अपने प्रिय को देख सकता है। प्रेमी नयनों का प्रिय दूर होते हुए भी उसी प्रकार देखा जाता जैसे चकोर

चंद्र को देखता है तो भी आँखों को कुछ ढाढ़स रहता। चकोर का चंद्रमा बादल से या अमावास्या आदि के कारण छिप जाता है। वह छिपा ही रहता हो, यह भी नहीं है, अपने समय पर उसके दर्शन होते ही हैं। चकोर की दीनता, प्रिय के दर्शन न पाने का दारिद्र्य, तभी तक है जब तक मेघ, तिथि, उपराम आदि की बाधा है। वह बाधा हटी, फिर चंद्रदर्शन। पर नेत्रों की स्थिति ऐसी नहीं। यह निश्चय नहीं है कि प्रिय के दर्शन कब होंगे, दर्शन मिलेंगे कि नहीं यह भी निश्चित नहीं है। इससे नेत्रों की दीनता चकोर की दीनता से बढ़कर ही नहीं है, अति की सीमा पर है। दीनता इसलिए अति है कि प्रिय के दर्शन की संभावना का निश्चय नहीं है। गति मति = गति मीन की और मति चकोर की। मीन की गति अर्थात् दशा अधीनता की होती है। नेत्रों की दशा उनसे बढ़कर अधीनता की है। दशा का संबंध शरीर से है। मछली का सारा कष्ट शरीरसंबंधी है। उसका शरीर प्रिय जल से पृथक् नहीं। उसी जल में उसकी गति है। जिये तो और मरे तो। चकोर की मति दीन होती है, बुद्धि ही मारी जाती है, जब चंद्रमा नहीं दिखता। चंद्रमा का प्रभाव बुद्धि पर विशेष पड़ता है। विरही के नेत्रों की मति अर्थात् उसका मानसिक पक्ष अत्यंत दरिद्रता का हो जाता है। विरही के नेत्र खुले हैं, पर कोई दृश्य ही नहीं दिखाई देता। उसके लिए प्रिय का रूप ही नेत्रों की ज्योति है। प्रिय नहीं तो नेत्रों की ज्योति नहीं। मीन का तो हिलना-डुलना सब बंद हो जाता है। चकोर स्तब्ध रह जाता है। पर नेत्रों की बाहरी क्रिया हिलना-डुलना, पलकें भाजना आदि सब होते रहते हैं। फिर भी वे कोई दृश्य प्रिय के बिना देख नहीं पाते। पेखिय = मीन की अधीनता और चकोर की दीनता तो देखी गई होगी, पर इन नेत्रों की अधीनता और दीनता जैसी है वैसी कहीं देखने को न मिली होगी। इसी से केवल देखने की नहीं 'पेखने' की बात कही जा रही है। 'पेखना' है 'प्रेक्षण' (प्र + ईक्षण), प्रकर्ष रूप से देखना। विशेष ध्यान से देखने योग्य है। घन आनंद = मीन का जल और चकोर का आकाशीय चंद्र, प्रेमी के प्रिय में दोनों के प्रियों की विशेषताएँ हैं। आनंद के बादल में जल भी है और आकाश में स्थिति भी है। जल द्रवणशील नहीं, उसमें यह दया नहीं कि अपने प्रेमी मीन के पास पहुँचकर उसे बचाए। पर आप द्रवणशील

हैं। कोई पिघलनेवाला तो हो, पर वह द्रवतत्त्व कम रखता हो तो उसके पिघलने पर भी किसी को तत्त्व कम ही हाथ लगेगा। पर यदि कोई 'रस-भरा' हो तो फिर अधिक तत्त्व मिलने की संभावना है। फिर आप भारे, भारी हैं भी—बड़े भी हैं। जलाशयों में जल बादलों से आया है और बादल चंद्रमा को ढक सकता है। इसलिए प्रेमी का प्रिय मीन और चकोर के प्रियों से भारी है, बढ़कर है। चातिक० = मीनवृत्ति और चकोरवृत्ति से चातकवृत्ति बहुत भिन्न है। मीन को एक तालाब से दूसरे तालाब में रख दीजिए कोई अंतर नहीं। वह किसी एक प्रकार के जल से प्रेम करनेवाला नहीं। चकोर वर्ष भर चंद्रदर्शन न करके, केवल वर्ष के किसी एक ही पखवारे में चंद्रदर्शन नहीं किया करता। प्रेमी चातकवृत्ति वाला है, जो प्रिय के अतिरिक्त किसी दूसरे से तो प्रेम कर ही नहीं सकता, साथ ही वह प्रिय को निरंतर देखते रहनेवाला नहीं। वर्ष भर रटता है, थोड़े दिनों उसका जल लेता है। बेचारे चातक की स्थिति वैसी नहीं। मीन का प्रिय एक जल उसे भूल जाए तो दूसरे जल से काम चल जाएगा। चंद्र एक पखवारे में नहीं दिखा तो दूसरे पखवारे में दिख जाएगा। पर चातक तो ऐसा करता नहीं, उसे तो स्वाती का ही जल चाहिए। वह भी जो जल सीधे चोंच में गया उसी पर संतोष। जो अपने प्रिय के थोड़े संयोग से ही इतना प्रफुल्ल रहता हो कि उसके आसरे वियोग का बहुत अधिक कष्ट सहन कर सकता हो उस प्रेमी का मेल क्या मिल सकता है। चातक की साधना विरहप्रधान है, प्रेमी की साधना विरहप्रधान है। यदि विरहप्रधान साधक को जब प्रिय की प्राप्ति होनी चाहिए उस समय उसको प्राप्ति न हो तो फिर प्रिय की प्राप्ति अधिक समय के अंतराल से होगी। ऐसे प्रेमी को यदि प्रिय भूल जाए, ठीक अवसर पर उसके सामने उपस्थित होना भूल जाय और यह भूलना एक बार न हो, अनेक बार हो तो उसकी तो बड़ी कठिन परीक्षा हो गई। 'चूकनि' में बहुवचन इसी से है। प्रियदर्शन के अवसर पर भी दर्शन नहीं दे सका है। स्वाती में चातक को यदि जल न मिले तो एक वर्ष के लिए रह गया और कई वर्षों तक स्वाती में वृष्टि न हो तो, चातक की भारी परीक्षा ली गई। सों = को। ब्रजी में सों को कों के अर्थ में कवियों ने बहुत प्रयुक्त किया है, विशेषतया केशव आदि प्राचीन कवियों ने। 'सों' का अर्थ 'से' ही रहेगा, यदि 'परेखियै' का अर्थ 'बुरा मानिए' किया जाएगा। उससे हुई भूलों के कारण बुरा मत

मानिए। चातक की भूल क्या हो सकती है। यही कि वह रटते-रटते इतना अशक्त हो गया हो कि उसकी वाणी जो पहले स्पष्ट सुन पड़ती रही हो अब न सुनाई पड़े। विरही की तो मौन में पुकार रहती ही है। यदि विरही के मौनावलंबन को प्रिय यह समझता हो कि उसने मुझे भुला दिया है तो यह ठीक नहीं है। प्रेमी के द्वारा भूलें और भी कल्पित हो सकती हैं। प्रिय की कठोरता का प्रचार प्रेमी के विरह के कारण हो रहा हो और प्रिय यह समझ ले कि इसमें प्रेमी का दोष है। अथवा जी जलने पर उसने उसे विश्वासघाती आदि कह दिया हो और इसे उसने गाँठ बाँध लिया हो।

जहाँ तें पधारे मेरे नैननि ही पाँव धारे
वारे ये विचारे प्रान पैंड पैंड पै मनौ।
आतुर न होहु हा हा नेकु फेंट छोरि बैठौ
मोहि वा बिसासी को है ब्यौरो बूझिबो घनौ।
हाय निरदई कों हमारी सुधि कैसें आई
कौन बिधि दीनी पाती दीन जानि कै भनौ।
झूठ की सचाई छाक्यौ त्यौं हित-कचाई पाक्यौ
ताके गुनगन घनआनँद कहा गनौ॥२०॥

प्रकरण—प्रिय के यहाँ से कभी कोई दूत नहीं आता था, पर इस बार वहाँ से दूत आया है। मौखिक संदेश लेकर नहीं आया है। प्रिय ने पत्रिका भी स्वयम् लिखकर दी है जो इतना निष्ठुर था कि किसी प्रकार प्रेमी की खोज-खबर नहीं लेता था उसने दूत भेजा और स्वहस्तलिखित पत्रिका देकर भेजा, इस पर प्रेमी को आश्चर्य है। वह प्रिय के इस दूत को तुरंत लौटा नहीं देना चाहता, उसकी उत्सुकता, कुतूहल इतना बढ़ा है, उसे इतनी अधिक जिज्ञासा हो गई है कि वह दूत से इसका पूरा विवरण चाहता है कि उस निर्दय प्रिय को प्रेमी की सुध आई तो कैसे आई और उसने पत्र लिखने की ओर भी ध्यान कैसे दिया। जो अपने वादों को पूरा न करता हो, जो प्रेम करने में कच्चा हो उसका इस प्रकार का कार्य अचरज में डालता है। इसी से प्रेमी पूरा विवरण चाह रहा है।

चूर्णिका—जहाँ तें० = प्रिय जहाँ जहाँ से गए वहाँ वहाँ मेरे नेत्रों पर पैर रखकर ही गए। मेरे नेत्र निरंतर उनका जाना एकटक देखते रहे। वारे = निछावर हुए। पैंड = डग, कदम। वारे ये० = मानो ये बेचारे मेरे

प्राण कदम कदम पर निछावर हो गए; उनकी चाल पर ये लोट-पोट होते रहे। आतु० = हड़बड़ी मत करो। नेकु० = थोड़ा फेंट छोड़कर आराम से बैठिए तो। बिस्वासी = विश्वासघाती। ब्यौरो = विवरण, हाल-चाल। मोहि० = मुझे तो उस विश्वासघाती का बहुत-सा हाल पूछना है। हाय० = उस निष्ठुर को मेरा स्मरण आया तो कैसे आया। दोन० = मुझे विरह में दुखी जानकर कहो। झूठ की० = वह तो झूठ की सचाई से छका (भरापूरा) है, यदि उसमें किसी बात की सचाई है तो झूठ की ही। त्यौं० = इसी प्रकार। हित० = प्रेम के कच्चेपन से पका हुआ है, यदि किसी बात में पक्का है तो प्रेम के कच्चेपन में ही। गुन = (विपरीत लक्षणा से) अवगुण।

तिलक—आपसे मैं जिस प्रिय के संबंध में, जिसके विवरण के हाल-चाल के बारे में, जिज्ञासा कर रही हूँ वे प्रिय मुझे कितने प्रिय थे उसका अनुमान इसी से लगा लो कि वे जिस मार्ग से यहाँ से गए मेरे नेत्रों पर पैर रखकर गए। उस मार्ग पर मेरे नेत्र उनके पैर रखने के पहले ही बिछ गए। मेरे ये प्राण जो प्रिय के विदेशगमन के कारण विवश थे उनके प्रत्येक कदम पर अपने को निछावर सा करते गए। उनकी गति पर लोट-पोट होते रहे, अपनी विवशता को इसी में भुलाए हुए थे। जिन प्रिय के संबंध में मेरे नेत्रों की यह स्थिति थी और जिनका मार्ग आज भी नेत्र देख रहे हैं आप उनकी पत्रिका लेकर आए हैं। साधारणतया प्रिय के निकट से आनेवाले के प्रति प्रेमी की उत्सुकता बहुत अधिक रहती है, पर यदि प्रेमी प्रिय के प्रति अत्यधिक आकृष्ट हो तो उसकी उत्सुकता भी बहुत हो जाती है। आप जो हड़बड़ी में पत्रिका देकर जाना चाहते हैं (कृपा कर) वैसा न करें। आप बहुत दूर से चलकर आ रहे हैं। कुछ विश्राम तो कर लीजिए। फेंट छोड़कर कुछ बैठ तो जाइए। बैठने से मेरे प्रयोजन की सिद्धि होनेवाली है। मुझे उस विश्वासघाती का बहुत सा विवरण पूछना है। खड़े खड़े आप उतना अधिक न बता सकेंगे। जो बताएँगे उतने से मेरी तृप्ति न होगी और देर तक आप खड़े रह गए तो आपको व्यर्थ कष्ट होगा। उस निष्ठुर को मेरी सुध कैसे आई। इतने दिनों तक उसने हाल-चाल जानने का कोई प्रयत्न नहीं किया, तो यह स्थिति आई तो कैसे आई। इसकी तो मुझे किसी प्रकार से संभावना ही नहीं रह गई थी। केवल सुध आने की ही बात होती तो भी कोई बात थी, उसने तो

पत्रिका भी आपको दी है। वह भी स्वयम् लिखकर दी है। भला यह असंभव कार्य कैसे संभव हो गया। यह परिवर्तन किस कारण उसमें आ गया। मुझे अत्यन्त दीन समझकर यह सब बताइए। मैं प्रिय की अनुकूलता के अभाव में अत्यंत दीन हो गई हूँ, उसकी इस अनुकूलता से मेरी दीनता के कम होने की संभावना है इसलिए इस दारिद्र्य को दूर करने के लिए आप ऐसा करें। जो झूठ के ही सच्चेपन से परिपूर्ण हो, कभी सत्य का व्यवहार न करता हो और जो प्रेम के ही कच्चेपन में पक्का हो अर्थात् जो भारी झूठा और भारी अप्रेमी हो उसमें इस वास्तविकता का और इस प्रेम का उदय! उसमें ये ही दो गुण (अवगुण) नहीं हैं, गुणगण हैं उसमें, इतने कि उनकी क्या गिनती की जाए।

व्याख्या—जहाँ तँ० = प्रिय जहाँ से पधारे वहाँ नेत्र इसलिए बिछ गए कि उनके कोमल चरणों को भूमि की कठोरता से किसी प्रकार का कष्ट न हो। नेत्र इतने कोमल हैं कि विधाता ने उनकी रक्षा के लिए पलकों का आवरण ही बना रखा है। अन्य अंगों के लिए ऐसा आवरण या ढक्कन नहीं है। प्रिय के कोमल चरणों को इन कोमल नेत्रों पर चलने से किसी प्रकार के कष्ट की संभावना नहीं। पर हो सकता है कि उन अत्यंत कोमल चरणों को नेत्रों की कोमलता से भी कुछ कष्ट हो इसलिए प्राण, जो निश्चय ही नेत्रों से भी कोमल हैं, उस मार्ग पर उनके प्रत्येक कदम रखने पर उनके नीचे आकर उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने देते थे। नेत्र तो मार्ग में बिछ गए पाँवड़े की भाँति, प्राण प्रत्येक कदम के नीचे गद्दी की तरह छा जाते रहे। बिचारे = प्रिय के प्रवास की बात से प्राण बे चारे के हो गए उनका कोई उपाय ही नहीं रह गया, इसलिए उनकी उपयोगिता इसी में थी कि वे निछावर कर दिए जायँ। मनौ = मानो कहने का तात्पर्य इतना ही है कि कल्पना में प्रेमी प्राणों को निछावर कर रहा था। आतुर० = दूत तुरंत लौट जाना चाहता है। यहाँ तक कि वह फेंट भी खोलकर नहीं बैठा। उसकी आतुरता के कारण कई कल्पित हो सकते हैं। प्रिय का आदेश होगा कि तुरंत लौट आना। संभव है उसे अन्यत्र भी कोई और कार्य सौंपा गया हो। उसे प्रेमी की व्यथा का पता हो और यह समझता हो कि यदि प्रेमी ने अपना रामरसड़ा छेड़ दिया तो बहुत विलंब लग जायगा। हाहा = इससे स्पष्ट है कि वह तुरंत ही लौट रहा है, इस शब्द के द्वारा उसे रोकने का प्रयास व्यक्त हो जाता है। नेकु = इसके द्वारा यह व्यंजित

है कि और अधिक न कीजिए तो थोड़ा फेंट ही खोलकर बैठिए। अर्थात् आपको रुकना चाहिए हाथ-पैर धोने चाहिए, खाना-पीना चाहिए। मार्ग की थकावट दूर करने के लिए विश्राम करना चाहिए। इतना अधिक यदि न कर सकें तो इतना ही कीजिए कि कमर का पटका खोलकर थोड़ा ही बैठ लें। मुझे विवरण 'घना' पूछना है। उसके लिए 'घना' बैठने की आवश्यकता है। उतना न सही तो 'नेकु' तो अवश्य बैठें। फेंट पूरी न खोलना चाहते हों तो बैठने के लिए उसे थोड़ी ही खोल लें। वा = इससे प्रिय के अत्यधिक विश्वासघाती होने का भी व्यंजना है, असाधारण विश्वासी। तभी तो उसका घना विवरण चाहिए। ब्यौरो = इससे बातों को साफ-साफ विस्तार से कहने का संकेत है। बूझिबो = बूझना यद्यपि पूछने के अर्थ में चलता है पर पूछना और बूझना में अर्थांतर है। पूछने में केवल पृच्छा है। उसके जानने, बुद्धि में बैठाने की आवश्यकता स्पष्ट नहीं है। बूझना = बुद्ध या बोध से है इसलिए उसमें बात को भलीभाँति समझने की अपेक्षा है। हाय = इसके दो संकेत हैं। प्रिय के पक्ष में उसके घोर निर्दय होने का, अपने पक्ष में अत्यधिक विवशता का। हमारो = प्रिय की तो यह बात थी कि वह औरों की चाहे जिसकी सुध करे पर हमारी सुध नहीं लेता था। 'हमारी' में प्रियपक्ष के लिए तो उसके द्वारा अत्यधिक उपेक्षा का संकेत है और प्रेमीपक्ष में अत्यंत वेदना का। दीन = दीनता के लिए 'हाहा' शब्द पहले ही आया; फिर 'हाय' से भी उसकी व्यंजना हुई, अब उसे स्पष्ट हो कह दिया। दीनी = प्रिय तो सदा लेनेवाले ही हैं देनेवाले कहाँ हैं— लै ही रहे हो सदा मन और को दैबो न जानत जान दुलारे। भनौ = 'भनौ' 'कहौ' से अंतर है। 'कहना' में घटना-मात्र से प्रयोजन रहता है पर 'भनना' में उन घटनाओं को हृदयंगम करने योग्य बनाकर कहना पड़ता है। वे बातें इस प्रकार कहो कि मेरे हृदय में आ सकें। दयौं = इसके द्वारा यह संकेत कि वह जितना ही झूठा है उतना ही प्रेम से रहित भी है। एक ही बात होती तो भी काम चल सकता था। प्रेम से रहित ही होता झूठा न होता, झूठा होता तो प्रेम से रहित न होता तो भी किसी प्रकार काम निकल सकता था। घनआनंद = दूसरे पक्ष में कवि के नाम से अतिरिक्त अर्थ में घना आनंद देने-वाले अर्थ से फिर घोर विषाद देनेवाला अर्थ निकल आता है। कहा = एक तो उनके अवगुण ही अगणित हैं, दूसरे उन्हें किसी प्रकार यदि गिना भी जाय तो प्रयोजन की सिद्धि होने से रही।

सूचना—जहाँ तें = इस पहले चरण को दूत के लिए भी नियोजित कर सकते हैं। प्रिय जिस मार्ग से आता है उसी मार्ग से दूत आया है। प्रिय के मार्गावलोकन में नेत्र लगे थे। दूत को देखकर प्रिय के आने की संभावना करके प्राण उसके आने पर निछावर होते रहे। 'भनौ' में जो कल्पना है वह दूत के लिए होने से प्रसंगप्राप्त हो जाएगी। दूत जान लेने पर 'भनौ' का व्यवहार वक्ता ने कर दिया है। अन्यथा 'भनौ' का व्यवहार प्रिय के लिए वैसा उत्तम नहीं।

अलंकार—विरोधाभास (विशेषतया चौथे चरण में)।